जल संग्रहण एवं भूजल भरण

डॉ. दीपक हरि रानडे

अजीर्णे भेषजं वारि, जीर्णे वारि बलप्रदम्।
भोजने चामृतं वारि, भोजनान्ते विषप्रदम।।

अर्थात् अपचन के लिए जल दवा है, पाचन के बाद जल बलदायक है, जल भूख बढ़ाता है तथा भोजन के बाद उसके दुष्प्रभावों से बचाता है।

इतने गुण संपन्न बहुमूल्य जल की आज कोई कदर नहीं है। यह माना जाता है कि प्रकृति से बिना मूल्य प्रचुर मात्रा में मिलता है अतः इसके संरक्षण पर ध्यान नहीं दिया जाता।

सृष्टि के आरंभ से ही इस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी का ही महत्व क्यों? क्योंकि जो सबसे अनमोल है वह पृथ्वी पर है। वह मैं हूँ पानी। कल-कल बहती नदियां ही मेरा जीवन है, मेरा स्वरूप है। उनकी पूजा की क्योंकि उसी ने मानव जाति को पीने, जीने योग्य पानी दिया। इठलाती, बलखाती सरिता सृष्टि का पोषण करती है ये नदियां। पर यह क्या मानव ने जिसे अपनी माँ कहा, उसे ही अंधाधुंध बहाकर दूषित कर दिया। आज मेरी बूंद-बूंद के लिये त्राहि-त्राहि होती है। मेरा अस्तित्व खतरे में है पर फिर भी मेरी उम्मीद खत्म नहीं हुई, कोई तो होगा जो मुझे बचाने, मुझे सहेजने का प्रयत्न करेगा।

जल ऐसी धुरी है जिस पर जन जीवन घूमता है, जिसके अभाव में सब शून्य है। देश के सभी भागों में वर्षा का जबरदस्त असंतुलन है। किसी भाग में यदि वर्षा सामान्यतः जन जीवन की आवश्यकता के अनुरूप रही तो शेष भाग अपर्याप्त वर्षा या अनावृष्टि से त्रस्त रहता है। युगों तक चले इस क्रम ने जल प्राप्ति के लिये स्त्रोतों को खोजने व जल संरक्षण के विकल्प के लिये बाध्य कर दिया। आरंभ में संसाधन एकल रूप में, फिर इसका निर्माण सामूहिक अर्थात सामाजिक दायित्व मानते हुये होने लगा। नगर और बसाहट में कूप, रूट, टांका, जोहड़, नदी, खडीन व बावड़ियों के प्रावधान रखे जाने लगे। यही नहीं जल स्त्रोतों के निर्माण को पुण्य एवं उदारता से भी जोड़ दिया गया।

संरक्षित जल-स्वस्थ जल

हमारे धार्मिक ग्रंथ और गाथायें जल संग्रहण एवं संरक्षण के पुराने तरीकों पर प्रकाश डालते हैं। पुराणों में भी जल के महत्व को दर्शाया गया है। कहा भी जाता है भागीरथ प्रयत्न से ही गंगा माता का धरा पर अवतरण हुआ था। गंगा की चंचल धारा को भी शिवजी की जटाओं से बांधा गया था। शायद इसीलिये किसी भी नदी की धारा के प्रवाह को रोकने हेतु बांधों का प्रचलन प्रारंभ हुआ।

सब शून्य है। देश के सभी भागों में वर्षा का जबरदस्त असंतुलन है। किसी भाग में यदि वर्षा सामान्यतः जन जीवन की आवश्यकता के अनुरूप रही तो शेष भाग अपर्याप्त वर्षा या अनावृष्टि से त्रस्त रहता है। युगों तक चले इस क्रम ने जल प्राप्ति के लिये स्त्रोतों को खोजने व जल संरक्षण के विकल्प के लिये बाध्य कर दिया। आरंभ में संसाधन एकल रूप में, फिर इसका निर्माण सामूहिक अर्थात सामाजिक दायित्व मानते हुये होने लगा। नगर और बसाहट में कूप, रूट, टांका, जोहड़, नदी, खडीन व बावड़ियों के प्रावधान रखे जाने लगे। यही नहीं जल स्त्रोतों के निर्माण को पुण्य एवं उदारता से भी जोड़ दिया गया।

धर्मग्रंथ शतपथ ब्राह्मण का सूत्र है-यज्ञों विष्णु अर्थात जल ही विष्णु है। इसकी व्याख्या में कहा गया है कि कोई भी यजनीय कार्य देव तुल्य है। पौधा रोपण, जलाशय निर्माण, शिक्षा दान और धर्मशाला निर्माण यजनीय कार्य की श्रेणी में आते हैं। जल संरक्षण का अर्थ जल के प्रयोग को घटाना एवं सफाई, निर्माण एवं कृषि आदि के लिये अवशिष्ट जल का पुनः चक्रण करना है। समय के साथ बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिकरण और कृषि विस्तार ने जल की मांग को बढ़ा दिया है। बांधों, जलाशयों व कुँओं के निर्माण से जल संग्रहण का प्रयास किया गया है। कुछ देशों में जल पुनर्चक्रीकरण व समुद्री जल से खारापन दूर किया जा रहा है। जल संरक्षण आज की आवश्यकता बन गया है। भूजल भरण का उपाय भी वर्षाजल को थामकर किया जा रहा है। जंगलों में, जल भूमि में रिसता है, क्योंकि वनस्पतियाँ वर्षा जल के प्रहार को कम कर उसे भूमि में प्रवेश करने का अधिक मौका देती है। यह भूजल, कुँओं, तालाबों, झीलों व नदियों को जल उपलब्ध कराता है। पुराने समय में भारतवर्ष में यह माना जाने लगा था कि जंगल नदियों की माँ होती हैं और इस कारण इन जल भंडारों के स्त्रोतों को पूजा जाता था। हमारे धार्मिक ग्रंथ और गाथायें जल संग्रहण एवं संरक्षण के पुराने तरीकों पर प्रकाश डालते हैं। पुराणों में भी जल के महत्व को दर्शाया गया है। कहा भी जाता है भागीरथ प्रयत्न से ही गंगा माता का धरा पर अवतरण हुआ था। गंगा की चंचल धारा को भी शिवजी की जटाओं से बांधा गया था। शायद इसीलिये किसी भी नदी की धारा के प्रवाह को रोकने हेतु बांधों का प्रचलन प्रारंभ हुआ। मोहन जोदड़ों तथा हड़प्पा में भी पर्यावरण व शुद्धता का ध्यान रखते हुये ढके हुये निकास नालियों का विस्तार शहरी सड़कों के नीचे पाया गया। सिंधु घाटी की सभ्यता जो कि सिंधु नदी के किनारे विकसित हुई, में तथा पश्चिम एवं उत्तर भारत के अनेक हिस्सों में आज से 5000 वर्ष पूर्व उन्नत शहरी जल वितरण एवं मल निकास पद्धति पायी गयी। गुजरात के रण कच्छ में पूर्ण विकसित जल संग्रहण व संरक्षण का अच्छा उदाहरण पाया गया है। पश्चिम घाट के नानेघाट में जो कि पुणे से 130 कि.मी. दूर है, वर्षा जल संग्रहण व संरक्षण की एक सबसे पुरानी पद्धति पायी गई है। चट्टानों को काटकर बनाये गये तालाबों की एक श्रृंखला यहाँ पायी गई है। पुराने व्यापार मार्ग पर आने-जाने वाले व्यापारियों को पीने का पानी उपलब्ध कराने हेतु यह पद्धति अत्यंत कारगर पाई गयी। महाराष्ट्र के ऐतिहासिक किलों मे स्वयं की जल संग्रहण व संरक्षण, पद्धतियाँ थी जो कि चट्टानों में बनाये गये पोखरों, तालाबों व कुँओं के रूप में आज भी उपलब्ध है और पेयजल हेतु उपयोग में लाये जा रहे हैं। रायगड़ का किला इसका एक सर्वोत्तम उदाहरण है। पुराने समय में पश्चिम राजस्थान के घरों, मकानों में छत का पानी संग्रहित करने का प्रयास किया जाता था। छतों पर गिरते वर्षा जल को भू-सतह पर बनाये गये टंकियों में एकत्रित किया जाता था। यह पद्धति आज भी कई किलों, महलों व घरों में देखी जा सकती है। मध्य प्रदेश के बुरहानपुर में भूमिगत मिट्टी के पाइपों एवं झिरियों से जल के प्रवाह को व्यवस्थित कर उसके वितरण की पद्धति आज भी सुचारू ढंग से चलायमान है। इसके अलावा इस पद्धति को आज भी गोलकुंडा, बीजापुर तथा औरंगाबाद के किलों में देखा जा सकता है। जलाशयों का अस्तित्व तो बनता मिटता रहता है किन्तु बावड़ियों का निर्माण शताब्दियों तक अमिट रहता है। कालान्तर में बावड़ियों का निर्माण शासको- राजवंशों का भी दायित्व बन गया। मालवा क्षेत्र में होल्कर घराने व सिंधिया घरानों द्वारा बनाये गये अनेक बावड़ियों व जलाशयों की जानकारी मिलती है।

प्राचीन व नवीनतम जल संरक्षण की तकनीकियों का समन्वयन व उनका जल संरक्षण में उपयोग इस प्राकृतिक व मानव निर्मित संकट का एक मात्र समाधान है। पौधों व कृषि हेतु जल मांग को कम करना भी जल संरक्षण का उत्तम उपाय है। जल का एक थोड़ा सा ही हिस्सा पौधों द्वारा उपयोग में लिया जाता है। बाकी हिस्सा या तो भूमि में रिस जाता है या फिर वाष्पीकरण द्वारा वायुमंडल में चला जाता है। अतः जल रिसाव व वाष्पीकरण को कम कर, जल मांग को कम किया जा सकता है। देश में सिंचाई के समस्त सतही एवं भूगर्भीय जल स्त्रोतों के पूर्ण विकास एवं दोहन के पश्चात भी लगभग 45 से 50 प्रतिशत कृषि क्षेत्र को वर्षा पर ही निर्भर रहना होगा। भूमि एवं जल संरक्षण कार्यो में परिस्थितिनुसार ढलान, बांध, समतलीकरण, गेबियन संरचनाएं, खुले दग्गड (खुले पत्थर) बधान, जलमार्ग बधिकाएं, घासयुक्त जलमार्ग, अपवर्तन निकास मार्ग, सीढ़ीदार पट्टियाँ, पक्की सिंचाई नालियां आदि बनाकर प्रदर्शन किये जाते हैं। कई स्थानों पर नालों का सरलीकरण कर कुछ पड़त जमीन को कृषि योग्य भी बनाया जाता है। इनके प्रभाव से जल अपवाह का सुरक्षित तरीके से विकास होता है साथ ही इससे होने वाले मृदा क्षरण पर भी प्रभावी ढंग से नियंत्रण पाया जाता है। इनके साथ ही प्रक्षेत्र तालाबों का निर्माण भी किया जाता है, किसानों द्वारा स्वयं के खेतों में बनाए गए प्रक्षेत्र तालाबों में भी वर्षा जल की पर्याप्त मात्रा एकत्रित की गयी है। इसके परिणाम स्वरूप ना केवल अच्छी वर्षा वाले सालों में इनमें जल अपवाह संग्रहित किया गया बल्कि कम वर्षा वाले सालों में भी इन तालाबों में इनको बनाने के दौरान स्थान चयन व आकार इत्यादि का सैद्धांतिक आधार पर निश्चित होने से भरपूर जल राशि एकत्रित की गयी। वैसे तो कृषक बंधु तालाबों में एकत्रित जल राशि के उपयोग हेतु सिंचाई को प्राथमिकता देते हैं परन्तु इनके द्वारा तालाबों में मछली पालन तथा सिंगाड़े की खेती भी की जाती है जिनसे इन्हें भरपूर आमदनी प्राप्त होती है। इनमें से कुछ किसानों द्वारा पिछले वर्षा की एकत्रित जलराशि को देखकर सोयाबीन के अतिरिक्त अन्य फसलों को उगाने का प्रयास किया गया है। वैज्ञानिक

इस दिशा में कई वर्षों से प्रयासरत् हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि तालाबों के निर्माण से यदि सिंचाई जल की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके तो फसल विविधकरण सम्भव है। पौधों के अवशेष, खाद आदि का पलवार के रूप में उपयोग कर जल अपवाह को कम करके भूमि में नमी की मात्रा को बढ़ाया एवं वाष्पीकरण को कम किया जा सकता है। अतः भूमि को अधिक समय तक बिन फसलों के खुला नहीं रखना चाहिये। भूमि की जुताई से भूमि में वर्षा जल का संग्रहण अधिक होता है। कृषि भूमि के चारों ओर वृक्षों, झाड़ियों का रोपण वायु की गति को कम करता है और वाष्पीकरण तथा भू अपरदन, भूक्षरण को कम करता है। ये वर्षा जल की गति को कम करता है और इसे भूमि में प्रवेशित करता है। समोच्च रेखाओं पर खेती कर जल एवं मृदा को संरक्षित किया जा सकता है। कुछ पौध प्रजातियाँ खारी भूमियों व जल के प्रति प्रतिरोधक होती हैं, अतः इन किस्मों को इस प्रकार की भूमियों में उगाना एक अच्छी पहल है। अधिक जल वाले क्षेत्रों से कम जल वाले क्षेत्रों में जल का प्रवाह कर जल क उचित उपयोग कर उसका अपव्यय रोका जा सकता है। नदियों, तालाबों व नहरों को एक दूसरे से जोड़ा जाना भी इसका एक उदाहरण है। उन्नत सिंचाई प्रणालियाँ जिसमें फव्वारा सिंचाई व टपक या ड्रिप सिंचाई पद्धतियाँ शामिल हैं, भी जल मांग को कम कर उसका अपव्यय रोकती हैं।

जल ग्रहण क्षेत्रों के विकास पर ध्यान देकर तथा बडे पैमाने पर योजनाएं बना कर जल संरक्षण का कार्य भी पूरे देश में किया जा रहा है। इन कार्यो के सुखद परिणाम भी दिख रहे हैं। झाबुआ जैसे क्षेत्रों में जहां पर केवल पहले वर्षा आधारित फसलों का उत्पादन किया जाता था आज कई क्षेत्रों में पानी की उपलब्धता से पूरे साल कई फसलों का उत्पादन प्राप्त किया जा रहा है। और वहां के किसान इन फसलों का उचित मूल्य प्राप्त कर अपना जीवन यापन कर रहे हैं। इन कार्यो से वहां के निवासियों को आज शहरों की तरफ मजदूरी करने नहीं आना पड़ता है।

♦ जल संग्रहण एवं भूजल हेतु एक समन्वित सफल प्रयास

शुष्क खेती क्रियात्मक अनुसंधान परियोजना, कृषि महाविद्यालय इन्दौर 25 वर्षों से मालवा क्षेत्र के विभिन्न जलग्रहण क्षेत्रों में मुख्यतः किसानों के खेतो पर अनुसंधान एवं विभिन्न कृषि तकनीकियों के प्रचार-प्रसार में प्रभावी ढंग से कार्य कर रहा है। इन परियोजनाओं के विभिन्न उद्देश्यों में प्राथमिक रूप से किसी जल ग्रहण क्षेत्र का ऐसा विकास करना भी है जिससे यह क्षेत्र विभिन्न संस्थाओं के लिए मॉडल के रूप में विकसित होकर इन संस्थाओं का शुष्क खेती की उन्नत तकनीकियों के संबंध में मार्गदर्शन कर सके।

सन् 2010 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (आई.सी.ए.आर.) नई दिल्ली की आवश्यकता व निर्देशानुसार एक नये गांव गद्दूखेड़ी जिला देवास का चयन परियोजना की आवश्यकतानुसार किया गया। इस कार्य हेतु कृषि विभाग देवास के विभिन्न अधिकारियों का सहयोग भी लिया गया। चूंकि परियोजना का पंचवर्षीय तकनीकी कार्यक्रम, अनुसंधान की दिशायें तथा मृदा एवं जल संरक्षण हेतु किये जाने वाले प्रयास आदि के बारे में निर्धारण किया जाना था, इस गांव की वास्तविक व जमीनी जानकारी प्राप्त करना भी आवश्यक था। इस हेतु एक ग्रामीण सहभागिता (पी.आर.ए.) के माध्यम से परियोजना के सदस्यों, कृषि विभाग के कई अधिकारियों व ग्रामीणों के बीच एक जीवंत सम्पर्क बनाया गया। इसके माध्यम से ग्रामीणों को परियोजना के माध्यम से किये जाने वाले विभिन्न अनुसंधान व प्रचार प्रसार कार्यक्रम के बारे में अवगत कराया गया। साथ ही कृषि विभाग के अधिकारियों के माध्यम से उस क्षेत्र में किये जाने वाले कार्यो की जानकारी देना भी था। इसके माध्यम से इन संभावनाओं को भी टटोलना था कि क्या कृषि विभाग व इस परियोजना द्वारा किसी एक समान कार्यक्रम हेतु जारी किये वाली राशि का समुचित उपयोग इस प्रकार किया जा सके कि उस कार्य का अधिकतम लाभ ग्रामीणों को पहुँचाया जा सके।

गद्दूखेड़ी के खेतों में काली मिट्टी पायी जाती है जिसमें कम नत्रजन, मध्यम स्फुर तथा अधिक पोटाश का स्तर पाया जाता है। ये मिट्टी ऊँचाई वाले क्षेत्रों में कम गहरी तथा मध्य में गहरी पायी जाती है। गांव गद्दूखेड़ी की औसत वर्षा 1067 मि.मी. है। इस कारण इस क्षेत्र से जल अपवाह काफी अधिक मात्रा में होता है तथा इस जल अपवाह की खेतों से सुरक्षित निकासी व उसका समुचित संग्रहण इस क्षेत्र के लिए लाभकारी होगा। साथ ही यह आंकलन किया गया कि इस संग्रहित जल का उपयोग यदि पानी की कमी के दौरान खेतों में किया जाये तो इस क्षेत्र की उत्पादकता व फसल प्रणाली में लाभकारी परिवर्तन किया जा सकता है। साथ ही यह अनुमान भी लगाया गया कि चूंकि यहां की मिट्टी की निचली परतों में मुरम पायी जाती है जिससे संग्रहित जल का भूमि में रिसन होकर यह आस-पास के कुओं और ट्यूबवेल में भूजल का समुचित भरण कर उनसे निकाले जाने वाली जल की मात्रा व उनसे प्राप्त होने वाली जल की अवधि को भी काफी अधिक बढ़ाया जा सकता है। अतः इस बैठक में यह तय किया गया कि परियोजना व कृषि विभाग इस कार्य को इस प्रकार सम्पादित करे कि ग्रामीणों को इस जल संरक्षण के उपाय से अधिकतम लाभ मिले। अगर यह कार्य सम्पादित किया जाये तो इस जल ग्रहण क्षेत्र से बहकर दूर चले जाने वाले जल अपवाह की मात्रा को काफी कम किया जा सकता है और एक बड़ी मात्रा में जल अपवाह को रोककर उसका कृषि में समुचित उपयोग सतही व भू-जल के माध्यम से किया जा सके। साथ ही कृषि खेती परियोजना के उदेश्यों व तकनीकी कार्यक्रम के अनुसार आने वाले कई वर्षों तक फसल प्रणाली से संबंधित तकनीकियों का प्रदर्शन व अनुसंधान कार्य आस-पास के किसानो के खेतों पर किया जा सके। साथ ही यह अनुमान लगाया गया कि यदि इस जल संरक्षण के कार्य को सफलता पूर्वक पहले ही वर्षों में सम्पादित किया जाये तो परियोजना के लिए यह एक किसानों का भरोसा जीतने वाली एक कड़ी व सीढी साबित होगी।

इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाते हुए परियोजना के सदस्यों व कृषि विभाग के अधिकारियों द्वारा एक ऐसी जगह का चयन किया गया, जहां पर जल को संरक्षित कर उसका अधिकतम लाभ लिया जा सके, जिससे आस-पास के किसान इस जल राशि का उपयोग अपने खेतों में कर सके। उपयुक्त स्थल का चयन करने के बाद तय किया गया कि कृषि विभाग के पास राष्ट्रीय जल ग्रहण परियोजना के अन्तर्गत जल संग्रहण तालाब के मद हेतु निर्धारित राशि का उपयोग कर पहली वर्षा में एक जल संग्रहण तालाब व उसका निकास द्वार बनाया जाएगा व इस हेतु शुष्क खेती परियोजना के सदस्य आवश्यक तकनीकी ज्ञान प्रदान

अच्छी पैदावार के लिए जल संग्रहण

भूजल के समुचित उपयोग से बेहतर पैदावार सुनिश्चित की जा सकती है

जल ग्रहण क्षेत्रों के विकास पर ध्यान देकर तथा बड़े पैमाने पर योजनाएं बना कर जल संरक्षण का कार्य भी पूरे देश में किया जा रहा है। इन कार्यो के सुखद परिणाम भी दिख रहे हैं। झाबुआ जैसे क्षेत्रों में जहां पर केवल पहले वर्षा आधारित फसलों का उत्पादन किया जाता था आज कई क्षेत्रों में पानी की उपलब्धता से पूरे साल कई फसलों का उत्पादन प्राप्त किया जा रहा है।

करेंगें। इसके बाद के जल संरक्षण के कार्य शुष्क खेती की क्रियात्मक अनुसंधान परियोजना के माध्यम से ही किये जायेंगे। अतः अप्रैल-मई माह 2010 में इस तालाब के निकास द्वार का निर्माण किया गया व साथ ही लगभग 1500 घन मीटर का तालाब भी बनवाया गया। 2010 की मानसून की बारिश में यह तालाब लबालब भर गया व काफी मात्रा में जल संग्रहण किया गया। परन्तु जैसा कि अनुमान लगाया गया था, निचली पर्तो में मुरम होने के कारण इस जल का रिसाव काफी जल्दी हो गया और एक सीमित मात्रा में ही सिंचाई के लिए जल उपलब्ध रहा।

सन् 2010 में बने निकास द्वार को देखकर सहज ही यह अनुमान लगाया कि इस निकास द्वार की ऊँचाई के अनुसार जल का संग्रहण मात्र तालाब वाले हिस्से में ही किया जा सका है। अतः परियोजना के सदस्यों द्वारा यह निश्चित किया गया कि यदि तालाब प्रक्षेप से 10 मीटर दूरी पर आगे की तरफ इस नाले में खुदाई की जाये तो न केवल इस निकास द्वार का समुचित उपयोग नाले के एक बहुत बड़े हिस्से में अतिरिक्त जल को संग्रहित किया जा सकता है बल्कि इस खुदाई से निकलने वाली काली मिट्टी को आस-पास के किसानों के खेतों में फैलाकर उस क्षेत्र की उत्पादकता को बढाया जा सकता है। अतः मार्च 2011 जे.सी.बी. के माध्यम के लगभग 100 मीटर लम्बाई तक नाले का गहरीकरण किया गया। साथ ही किसानों के द्वार अपनी ओर से ट्रेक्टर ट्रॉली व डंपरो के माध्यम से इस खुदी हुई मिट्टी को उनके खेतों तक फैलाया गया। इस कार्य को देखकर अब यह कहा जा सकता था कि शुष्क खेती परियोजना कृषि विभाग व किसानों की सहभागिता के परिणाम स्वरूप एक ऐसी बड़ी जल संग्रहण संरचना का निर्माण हो चुका है कि इसका लाभ इस क्षेत्र को अवश्य ही मिलेगा।

सन् 2011 की मानसून के दौरान इस निकास द्वार तालाब का भरपूर उपयोग लिया गया। मार्च 2011 में किये गये कार्य के परिणाम स्वरूप 2200 घन मीटर का अतिरिक्त जल संग्रहण किया गया। चूंकि तालाब का वास्तविक लाभ का आंकलन कुओं व ट्यूबवेल में भू जल ग्रहण के आंकडे एकत्रित कर किया जा सकता है परन्तु यह कार्य व्यवहारिक रूप से कई किसानों के खेतों में संभव नहीं था। अतः यह निश्चित किया गया कि यह आंकड़े उसी किसान से एकत्रित किये जावे जिसके खेत, कुएं व ट्यूबवेल इस नाले के आसपास मौजूद हो अतः यह आंकड़े एक अध्ययन हेतू श्री वासूदेव के खेत से एकत्रित किये गये। सन् 2011 से सोयाबीन की कटाई के उपरान्त उसके द्वारा 10 हैक्टेयर क्षेत्र में सबमर्सीबल पम्प का उपयोग कर गेंहू व चने को बोया गया। इसी प्रकार वासूदेव के एक कुएं जिसको पाईप के माध्यम से नाले से जोड़ा गया था उससे भी लगातार जल प्राप्त किया साथ ही यह भी देखा गया कि उसके ट्यूबवेल से मिलने वाली जल की अवधि भी अन्य वर्षों की तुलना में गर्मियों तक बढ़ गई। इस प्रकार सन् 2012 तथा 2013-14 में भी वासूदेव द्वारा सतही व भू जल का समुचित उपयोग किया गया तथा एक बड़े क्षेत्र पर रबी की गेंहू व चने की फसलों को बो कर भरपूर लाभ प्राप्त किया।

जहां तालाब निर्माण के पूर्व वासुदेव 8 हैक्टेयर पर चना व 2 हैक्टेयर पर गेंहू बोते थे। वहीं वह सन् 2011 से लगातार 8 हैक्टेयर पर गेंहू व 2 हैक्टेयर पर चना बोकर लाभ उठा रहे है इसके अलावा जल की उपलब्धता होने से व उस सीमित क्षेत्र में आलू, सब्जियां व चारे को भी उगा रहे है।

तालाब निर्माण के पूर्व वासुदेव ने खेती के अलावा अतिरिक्त आय प्राप्त करने हेतु डेरी व्यवसाय हेतु 4 भैंसों व 1 गाय को पालन प्रारम्भ किया था। जल का उपलब्धता ना होने से उन्हें उनके पालन पोषण में काफी समस्याएं आ रही थी और वह किसी प्रकार केवल परिवार हेतु दूध का उत्पादन कर पा रहे थे। इस तालाब के निर्माण के बाद जल उपलब्धता बढ़ने, कुओं व ट्यूबवेल से लगभग पूरे वर्षा जल प्राप्त होने से उनका आत्म विश्वास इस कदर बढ़ गया कि माह मार्च 2013 में 15 भैंसे उनके द्वारा खरीदी गई और इस हेतु उन्होने वर्ष भर अपने खेतों में चारे का उत्पादन भी किया। सन् 2014 से वासुदेव का परिवार पूर्णतः डेयरी व्यवसाय में अपने पांव सफलतापूर्वक जमा चुका है और लगातार अतिरिक्त आय प्राप्त कर रहा है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शुष्क खेती, क्रियात्मक अनुसंधान द्वारा जल संग्रहण के इस कार्य का परियोजना, कृषि विभाग व किसानों की सहभागिता से ना केवल एक बड़ी जल राशि को संग्रहीत किया व इस जल अपवाह को लगातार रोक कर भूजल भरण हेतु भी उपयोग में लाया गया। इस प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि विभिन्न परियोजनाओं हेतु प्राप्त होने वाली राशि का उपयोग सामूहिक व समन्वित रूप से कर क्षेत्र विकास की परियोजनाओं का अधिकतम लाभ उठाया जा सकता है। इस जल संग्रहण तालाब के निर्माण को निश्चित ही रूप से सफल गाथा के रूप में जाना जा रहा है। साथ ही विभिन्न शुष्क खेती तकनीकियों का प्रचार व प्रसार कर इन किसानों के खेतों से अनुसंधान के महत्वपूर्ण आंकडे एकत्रित किये जा रहे हैं जो कि आने वाले समय में कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु एक मार्गदर्शक हो सकते हैं।

जल संरक्षण से -

- जल की उपलब्धता बढ़ती है।
- गिरते भूजल के स्तर को बढ़ाया जा सकता है।
- पर्यावरण को शुद्ध बनाया जा सकता है।
- भूजल की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है।
- भूक्षरण को रोका जा सकता है तथा बाढ़ आदि से शहरी क्षेत्रों को बचाया जा सकता है।

वर्षा बूंदो को सहेज कर उसका समुचित उपयोग कर ही इस धरा पर खुशहाल जीवन संभव है। आधुनिक व पुरानी जल संरक्षण पद्धतियां अपना कर ही प्रकृति की इस बहुमूल्य भेंट को संजोकर व उसका समुचित व न्यायपूर्ण तरीके से उपयोग से ही हमारी आगे आने वाली पीढी का भविष्य निर्भर करता है। और साथ ही जल की कमी से ही तीसरे विश्व युद्ध की जो संभावनाऐं है उन्हें दूर किया जा सकता है।

संपर्क करें:
डॉ. दीपक हरि रानडे
शुष्क खेती क्रियात्मक अनुसंधान परियोजना, कृषि महाविद्यालय इन्दौर (मध्यप्रदेश)